2

11101CH02

भारतीय अर्थव्यवस्था 1950–1990

© NCERT not to be republished

इस पाठ के अध्ययन के बाद आप

- भारत की पंचवर्षीय योजनाओं के लक्ष्यों को जानेंगे;
- वर्ष 1950 से 1990 तक विभिन्न क्षेत्रकों, जैसे कृषि और उद्योग में अपनाई गई विकास की नीतियों को समझेंगे;
- एक नियमित अर्थव्यवस्था के गुणों तथा सीमाओं की विवेचना कर सकेंगे।

भारत में योजना का मुख्य उद्देश्य ..... विकास की एक ऐसी प्रक्रिया प्रारंभ करना है जो रहन-सहन के स्तर को ऊँचा उठाए तथा लोगों के लिए समृद्ध एवं वैविध्यपूर्ण जीवन के नये अवसर उपलब्ध करायेगी।

–प्रथम पंचवर्षीय योजना

2.1 परिचय

15 अगस्त, 1947 के दिन भारत में स्वतंत्रता का एक नया प्रभात उदित हुआ। अंतत: दो सौ वर्षों के ब्रिटिश शासन के बाद हम अपने भाग्य के विधाता बन गए। अब राष्ट्र के नव-निर्माण का कार्य हमारे अपने हाथों में था। स्वतंत्र भारत के नेताओं को अन्य बातों के साथ-साथ यह भी तय करना था कि हमारे देश में कौन-सी आर्थिक प्रणाली सबसे उपयुक्त रहेगी, जो केवल कुछ लोगों के लिए नहीं बल्कि सर्वजन कल्याण के लिए कार्य करेगी। विभिन्न प्रकार की आर्थिक प्रणालियाँ हो सकती हैं (देखें बॉक्स 2.1), पर जवाहरलाल नेहरु को समाजवाद का प्रतिमान सबसे अच्छा लगा। किंतु वे भी भूतपूर्व सोवियत संघ की उस नीति के पक्षधर नहीं थे, जिसमें उत्पादन के सभी साधन (खेत और कारखाने) सरकार के स्वामित्व के अंतर्गत थे। कोई निजी संपत्ति नहीं थी। लोकतंत्र के प्रति वचनबद्ध भारत जैसे देश में सरकार के लिए पूर्व सोवियत संघ की तरह, अपने नागरिकों के भू-स्वामित्व के प्रतिमानों तथा अन्य संपत्तियों को परिवर्तित कर पाना संभव नहीं था।

नेहरु तथा स्वतंत्र भारत के अनेक अन्य नेताओं और चिंतकों ने मिलकर नव-स्वतंत्र भारत के लिए पूँजीवाद तथा समाजवाद के अतिवादी व्याख्या के किसी विकल्प की खोज की। बुनियादी तौर पर यद्यपि उन्हें समाजवाद से सहानुभूति थी, फिर भी उन्होंने ऐसी आर्थिक प्रणाली अपनाई जो उनके विचार में समाजवाद की श्रेष्ठ विशेषताओं से युक्त, किंतु कमियों से मुक्त थी। इसके अनुसार भारत एक ऐसा समाजवादी समाज होगा, जिसमें सार्वजनिक क्षेत्रक एक सशक्त क्षेत्रक होगा, जिसके अंतर्गत निजी संपत्ति और लोकतंत्र का भी स्थान होगा।

इन्हें कीजिए

- विश्व में प्रचलित विभिन्न आर्थिक प्रणालियों का एक चार्ट बनाइए। पूँजीवादी, समाजवादी तथा मिश्रित अर्थव्यवस्था वाले देशों की सूची बनाइए।
- किसी कृषि फॉर्म पर अपनी कक्षा के साथ भ्रमण की योजना बनाइए। कक्षा के सात समूह बनाएँ और प्रत्येक समूह को एक विशेष विषय में जानकारी एकत्र करने का काम सौंप दें। उदाहरण के लिए, इस भ्रमण का उद्देश्य, इसमें खर्च होने वाली धन राशि, लगने वाला समय तथा संसाधन, साथ जाने वाले ऐसे व्यक्ति जिनसे संपर्क स्थापित करना है, भ्रमण के स्थानों के नाम, पूछे जाने वाले संभावित प्रश्न आदि। अपने शिक्षक की सहायता से इन विशिष्ट उद्देश्यों का संग्रह कीजिए तथा ऐसे कृषि फार्म के भ्रमण की सफलता के दीर्घकालिक उद्देश्यों से उनकी तुलना कीजिए।

© NCERT not to be republished

Reprint 2026-27

बॉक्स 2.1 आर्थिक प्रणालियों के प्रकार

प्रत्येक समाज को तीन प्रश्नों के उत्तर देने होते हैं:

- देश में किन वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन किया जाए?
- वस्तुएँ और सेवाएँ किस प्रकार उत्पादित की जाएँ? उत्पादक इस कार्य में मानव श्रम का अधिक प्रयोग करे अथवा पूँजी (मशीनों) का?
- उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं का विभिन्न व्यक्तियों के बीच किस प्रकार वितरण किया जाना चाहिए?

इन सभी प्रश्नों का एक उत्तर तो माँग और पूर्ति का **बाज़ार की शक्तियों** पर निर्भर करता है। बाज़ार अर्थव्यवस्था में, जिसे पूँजीवादी अर्थव्यवस्था भी कहते हैं, उन्हीं उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन होता है जिनकी बाज़ार में माँग है। इसमें, वही वस्तुएँ उत्पादित की जाती हैं जिन्हें देश के घरेलू या विदेशी बाज़ारों में सलाभ बेचा जा सके। यदि कारों की माँग है तो कारों का उत्पादन होगा और साइकिलों की माँग है तो साइकिलों का उत्पादन होगा। यदि श्रम, पूँजी की अपेक्षा सस्ता है तो अधिक श्रम प्रधान विधियों का प्रयोग होगा और यदि श्रम की अपेक्षा पूँजी सस्ती है, तो उत्पादन की अधिक पूँजी प्रधान विधियों का प्रयोग होगा। **पूँजीवादी** अर्थव्यवस्था में उत्पादित वस्तुओं का विभिन्न व्यक्तियों के बीच वितरण उनकी आवश्यकताओं के अनुसार नहीं होता। अधिकांश विभाजन इस आधार पर होता है कि व्यक्तियों की क्रय–क्षमता कितनी है और वे किन वस्तुओं और सेवाओं को खरीदने की क्षमता रखते हैं। अभिप्राय यह है कि खरीदने के लिए जेब में रुपये होने चाहिए। कम कीमत पर गरीबों के लिए घर आवश्यक है किंतु इसकी गणना बाजार माँग को ध्यान में रखकर नहीं की जानी चाहिए क्योंकि माँग के अनुसार गरीबों की क्रयशक्ति नहीं है। परिणामस्वरूप इस वस्तु की उत्पादन और पूर्ति बाजार शक्ति के अनुसार नहीं हो सकती है। हमारे प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरु को ऐसी व्यवस्था पसंद नहीं थी, क्योंकि ऐसी व्यवस्था को अपनाने से हमारे देश के अधिकांश लोगों को अपनी स्थिति सुधारने का अवसर ही नहीं मिल पाता।

समाजवादी समाज इन तीनों प्रश्नों के उत्तर पूर्णतया भिन्न तरीके से देता है। समाजवादी समाज में सरकार ही यह निर्णय लेती है कि समाज की आवश्यकताओं के अनुसार भिन्न वस्तुओं का उत्पादन किया जाए। यह माना जाता है कि सरकार यह जानती है कि देश के लोगों के हित में क्या है, इसीलिए लोगों की वैयक्तिक इच्छाओं को कोई महत्त्व नहीं दिया जाता। सरकार ही यह निर्णय करती है कि वस्तुओं का उत्पादन तथा वितरण किस प्रकार किया जाए। सिद्धांततः यह माना जाता है कि समाजवाद में वितरण लोगों की आवश्यकता के आधार पर होता है, उनकी क्रय क्षमता के आधार पर नहीं। इसके विपरीत एक समाजवादी राष्ट्र अपने सभी नागरिकों को निःशुल्क स्वास्थ्य सेवाएँ सुलभ कराता है। समाजवादी व्यवस्था में निजी संपत्ति का कोई स्थान नहीं होता क्योंकि प्रत्येक वस्तु राज्य की होती है। उदाहरण के लिए चीन और क्यूबा में अधिकतर आर्थिक गतिविधियाँ सामाजिक सिद्धांत द्वारा निर्देशित होती हैं।

अधिकांश अर्थव्यवस्थाएँ मिश्रित अर्थव्यवस्थाएँ हैं, अर्थात् सरकार तथा बाज़ार एक साथ इन तीनों प्रश्नों के उत्तर देते हैं कि क्या उत्पादन किया जाए, किस प्रकार उत्पादन हो तथा किस प्रकार वितरण किया जाए। मिश्रित अर्थव्यवस्थाओं में बाज़ार उन्हीं वस्तुओं और सेवाओं को सुलभ कराता है, जिसका वह अच्छा उत्पादन कर सकता है तथा सरकार उन आवश्यक वस्तुओं और सेवाओं को सुलभ कराती है, जिन्हें बाज़ार सुलभ कराने में विफल रहता है।

Reprint 2026-27

बॉक्स 2.2 योजना क्या है?

योजना इसकी व्याख्या करती है कि किसी देश के संसाधनों का प्रयोग किस प्रकार किया जाना चाहिए। योजना के कुछ सामान्य तथा कुछ विशेष उद्देश्य होते हैं, जिनको एक निर्दिष्ट समयावधि में प्राप्त करना होता है। भारत में योजनाएँ पाँच वर्ष की अवधि की होती थी और इसे पंचवर्षीय योजनाएँ कहा जाता था (यह शब्दावली राष्ट्रीय नियोजन में अग्रणी देश पूर्व सोवियत संघ से ही ली गई थी)। हमारे योजना के वर्ष 2017 तक के प्रलेखों में केवल पाँच वर्ष की योजना अवधि में प्राप्त किये जाने वाले उद्देश्यों का ही उल्लेख नहीं किया गया, अपितु उनमें आगामी बीस वर्षों में प्राप्त किए जाने वाले उद्देश्यों का भी उल्लेख होता है। इस दीर्घकालिक योजना को परिप्रेक्ष्यात्मक योजना कहते हैं। पंचवर्षीय योजनाओं द्वारा परिप्रेक्ष्यात्मक योजनाओं के लिए आधार प्राप्त होने की अपेक्षा की जाती है।

यह तो संभव नहीं होगा कि सभी योजनाओं में उसके सभी लक्ष्यों को एक समान महत्त्व दिया जाए। वस्तुत: विभिन्न लक्ष्यों में कुछ अंतर्द्वद्व भी हो सकता है। उदाहरण के लिए, यदि प्रौद्योगिकी श्रम की आवश्यकता को कम करती हैं तो आधुनिक प्रौद्योगिकी के शुरू करने के लक्ष्य तथा रोजगार बढ़ाने के लक्ष्य में विरोध हो सकता है। आयोजकों को इस प्रकार के विरोधों का संतुलन करना पड़ता है- यह कार्य इतना सहज नहीं है। भारत की विभिन्न योजनाओं में अलग-अलग लक्ष्यों पर बल दिया गया है।

भारत की पंचवर्षीय योजनाएँ यह नहीं बतातीं थी कि प्रत्येक वस्तु और सेवा का कितना उत्पादन किया जाएगा। यह न तो संभव है और न ही आवश्यक (पूर्व सोवियत संघ ने यह कार्य करने का प्रयास किया था और वह पूरी तरह विफल रहा)। अत: इतना ही पर्याप्त है कि योजनाएँ उन्हीं क्षेत्रकों के विषय में स्पष्ट लक्ष्य निर्धारित करें जिनमें उनकी महत्वपूर्ण भूमिका हो, जैसे विद्युत् उत्पादन और सिंचाई आदि। शेष को बाज़ार पर छोड़ दिया जाना ही अधिक श्रेयस्कर रहता है।

सरकार अर्थव्यवस्था के लिए योजना बनायेगी (देखें बॉक्स 2.2)। निजी क्षेत्रक को भी योजना प्रयास का एक अंग बनने के लिए प्रोत्साहित किया जायेगा।

औद्योगिक नीति प्रस्ताव, 1948 तथा भारतीय संविधान के नीति निदेशक सिद्धांतों का भी यही दृष्टिकोण है। वर्ष 1950 में प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में **योजना आयोग** की स्थापना की गई। इस प्रकार पंचवर्षीय योजनाओं के युग का सूत्रपात हुआ।

2.2 पंचवर्षीय योजनाओं के लक्ष्य

किसी योजना के स्पष्टत: निर्दिष्ट लक्ष्य होने चाहिए। पंचवर्षीय योजनाओं के लक्ष्य थे: संवृद्धि, आधुनिकीकरण, आत्मनिर्भरता और समानता। इसका अर्थ यह नहीं है कि प्रत्येक योजना में इन लक्ष्यों को एक समान महत्त्व दिया गया है। सीमित संसाधनों के कारण प्रत्येक योजना में ऐसे लक्ष्यों का चयन करना पड़ता है, जिनको प्राथमिकता दी जानी है। हाँ, योजनाकारों को यह सुनिश्चित करना होता है कि जहाँ तक संभव हो, चारों उद्देश्यों में कोई अंतर्विरोध न हो। आइए, योजना के इन लक्ष्यों के विषय में विस्तार से जानने का प्रयास करें।

संवृद्धि: इसका अर्थ है देश में वस्तुओं और सेवाओं की उत्पादन क्षमता में वृद्धि। इसका अभिप्राय उत्पादक पूँजी के अधिक भंडार या परिवहन, बैंकिंग आदि सहायक सेवाओं का विस्तार या उत्पादक पूँजी तथा सेवाओं की

Reprint 2026-27

बॉक्स 2.3 महालनोबिसः भारतीय योजनाओं के निर्माता

भारत की पंचवर्षीय योजनाओं के निर्माण में अनेक प्रसिद्ध विचारकों का योगदान रहा है। उनमें सांख्यिकीविद् प्रशांतचन्द्र महालनोबिस का नाम उल्लेखनीय है। द्वितीय पंचवर्षीय योजना का सामान्यतः विकासात्मक योजना में एक अति महत्वपूर्ण योगदान है। योजना का काम सही मायने में द्वितीय पंचवर्षीय योजना से प्रारंभ हुआ। इसमें भारतीय योजना के लक्ष्यों से संबंधित आधारिक विचार दिये गये हैं। यह योजना महालनोबिस के विचारों पर आधारित थी। इस अर्थ में, उन्हें भारतीय योजना का निर्माता माना जा सकता है।

महालनोबिस का जन्म 1893 में कलकत्ता (कोलकाता) में हुआ था। इनकी शिक्षा प्रेसीडेंसी कॉलेज कलकत्ता (कोलकाता) तथा सेंट्रल युनिवर्सिटी, इंग्लैंड में हुई। सांख्यिकी विषय में उनके योगदान के कारण उन्हें अंतर्राष्ट्रीय ख्याति मिली। 1945 में उन्हें ब्रिटेन की एक सोसाइटी का फेलो (सदस्य) बनाया गया। यह वैज्ञानिकों का एक सर्वाधिक प्रतिष्ठित संगठन है; जिसका सदस्य केवल उत्कृष्ट वैज्ञानिकों को ही बनाया जाता है।

महालनोबिस ने कोलकाता में भारतीय सांख्यिकी संस्थान (आई.एस.आई) स्थापना की तथा 'सांख्य' नामक एक जर्नल निकाला, जो आज भी सांख्यिकीविदों के लिये परस्पर विचार-विमर्श के लिये एक प्रतिष्ठित मंच बना हुआ है। आज भी आई.एस.आई. तथा सांख्य दोनों को ही समस्त विश्व में सांख्यिकीविदों और अर्थशास्त्रियों द्वारा अतिसम्मान की दृष्टि से देखा जाता है।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना के दौरान महालनोबिस ने भारत के आर्थिक विकास के लिए भारत तथा विदेशों से प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों को आमंत्रित किये जाने की सलाह दी। कालांतर में इनमें से कुछ अर्थशास्त्रियों को नोबेल पुरस्कार मिला। यह इस बात को दर्शाता है कि उन्हें प्रतिभाशाली व्यक्तियों की पहचान थी। महालनोबिस द्वारा आमंत्रित किये गये अर्थशास्त्रियों में वे लोग भी थे, जो द्वितीय पंचवर्षीय योजना के समाजवादी सिद्धांतों के कटु आलोचक थे। दूसरे शब्दों में, वह अपने आलोचकों को सुनने के भी इच्छुक थे। यह उनकी महान विद्वता का द्योतक है।

आज अनेक अर्थशास्त्री महालनोबिस के योजना संबंधी दृष्टिकोण को अस्वीकार करते हैं। परंतु भारत को आर्थिक प्रगति के पथ पर अग्रसर करने में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका के लिये उन्हें सदैव स्मरण किया जायेगा। सांख्यिकीविद् सांख्यिकीय सिद्धांत में उनके योगदान से लाभ उठाते रहेंगे।

स्रोत: *सुखमय चक्रवर्ती महालनोबिस, प्रशांतचन्द्र इन जोन ईटवैल इट.एल. दी न्यू पाल्ग्रेव डिक्शनरी, इकॉनामिक डेवलपमेंट, डब्ल्यू.डब्ल्यू, नार्टन न्यूयार्क एंड लंदन।*

Reprint 2026-27

बॉक्स 2.4 सेवा क्षेत्रक

देश के विकास के साथ-साथ इसमें एक संरचनात्मक परिवर्तन आता है। भारत में तो यह परिवर्तन बहुत विचित्र रहा है। सामान्यत: विकास के साथ-साथ सकल घरेलू उत्पाद में कृषि का अंश कम होता है और उद्योगों का अंश प्रधान होता है। विकास के उच्चतर स्तर पर पहुँच कर जी.डी.पी. में सेवाओं का अंशदान अन्य दोनों क्षेत्रकों से अधिक हो जाता है। भारत में, जैसा कि एक गरीब देश में अपेक्षा की जाती है, जी.डी.पी. में कृषि का अंश 50 प्रतिशत से अधिक था। किंतु, 1990 में सेवा क्षेत्रक का अंश बढ़कर 40.59 प्रतिशत हो गया- यह कृषि तथा उद्योग दोनों से ही अधिक था। ऐसी स्थिति तो प्राय: विकसित देशों में ही पायी जाती है। 1991 के बाद की अवधि में तो सेवा क्षेत्रक के अंश की संवृद्धि की यह प्रवृत्ति और बढ़ गई। इससे देश में वैश्वीकरण का प्रारंभ हुआ। इसकी चर्चा अध्याय 3 में विस्तार से की जायेगी।

दक्षता में वृद्धि से है। अर्थशास्त्र की भाषा में आर्थिक संवृद्धि का प्रामाणिक सूचक सकल घरेलू उत्पाद (जी.डी.पी.) में निरंतर वृद्धि है। जी.डी.पी. एक वर्ष की अवधि में देश में हुए सभी अंतिम वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन का बाज़ार मूल्य होता है। आपने यह अवधारणा कक्षा X में भी पढ़ी है। यदि जी.डी.पी. को एक 'केक' मान लिया जाए तो संवृद्धि का अर्थ इसके आकार में वृद्धि होगा। यदि केक बड़ा होगा तो अधिक लोग उपभोग कर पाएँगे। यदि भारतीय जनता को अधिक समृद्ध और विविधतापूर्ण जीवन यापन करना है, (प्रथम पंचवर्षीय योजना के अनुसार), तो वस्तुओं और सेवाओं का अधिक उत्पादन करना आवश्यक है।

देश का सकल घरेलू उत्पाद देश की अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रकों से प्राप्त होता है। ये क्षेत्रक हैं- कृषि क्षेत्रक, औद्योगिक क्षेत्रक और सेवा क्षेत्रक। इन क्षेत्रकों के योगदान से ही अर्थव्यवस्था का ढाँचा तैयार होता है। कुछ देशों में सकल घरेलू उत्पाद की संवृद्धि में कृषि का योगदान अधिक होता हैं तो कुछ में सेवा क्षेत्रक की वृद्धि इसमें अधिक योगदान करती है (देखें बॉक्स 2.4)।

आधुनिकीकरण: वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन बढ़ाने के लिए उत्पादकों को नई प्रौद्योगिकी अपनानी पड़ती है। उदाहरण के लिए, किसान पुराने बीजों के स्थान पर नई किस्म के बीजों का प्रयोग कर खेतों की पैदावार बढ़ा सकता है। उसी प्रकार, एक फैक्ट्री नई मशीनों का प्रयोग कर उत्पादन बढ़ा सकती है। नई प्रौद्योगिकी को अपनाना ही आधुनिकीकरण है।

आधुनिकीकरण केवल नवीन प्रौद्योगिकी के प्रयोग तक सीमित नहीं है, बल्कि इसका उद्देश्य सामाजिक दृष्टिकोण में परिवर्तन लाना भी है, जैसे यह स्वीकार करना कि महिलाओं का अधिकार भी पुरुषों के समान होना चाहिए। परंपरागत समाज में नारी का कार्यक्षेत्र घर की सीमाओं तक सीमित मान लिया जाता है। आधुनिक समाज में नारी की प्रतिभाओं का घर से बाहर- बैंकों, कारखानों, विद्यालयों आदि स्थानों पर प्रयोग किया जाता है और

Reprint 2026-27

© NCERT not to be republished

इन्हें कीजिए

- निम्नलिखित के लिए प्रयुक्त प्रौद्योगिकी में आए परिवर्तनों पर अपनी कक्षा में चर्चा कीजिए।
  (क) खाद्यान्न उत्पादन
  (ख) उत्पादन की पैकेजिंग
  (ग) जन संचार
- उन वस्तुओं को ज्ञात कीजिए तथा उन मुख्य वस्तुओं की सूची बनाइए, जिनका भारत ने 1990–91 तथा 2018–19 (इसके लिए पृष्ठ संख्या 192 भी देखें) के दौरान आयात एवं निर्यात किया था।
  (क) अंतर बताइए।
  (ख) क्या आपको आत्मनिर्भरता का प्रभाव दिखाई देता है? चर्चा करें।
  उपर्युक्त विषयों में विस्तृत जानकारी के लिए आप नवीनतम 'आर्थिक सर्वेक्षण' को देख सकते हैं।

ऐसा करने वाला समाज ही अधिकांशतः समृद्ध होता है।

आत्मनिर्भरताः कोई राष्ट्र आधुनिकीकरण और आर्थिक संवृद्धि, अपने अथवा अन्य राष्ट्रों से आयातित संसाधनों के प्रयोग के द्वारा कर सकता है। हमारी प्रथम सात पंचवर्षीय योजनाओं में आत्मनिर्भरता को महत्त्व दिया गया, जिसका अर्थ है कि उन चीज़ों के आयात से बचा जाए, जिनका देश में ही उत्पादन संभव था। इस नीति को, विशेषकर खाद्यान्न के लिए अन्य देशों पर निर्भरता कम करने के लिए आवश्यक समझा गया। हाल ही में विदेशी शासन से मुक्त हुए देश के लोगों की आत्मनिर्भरता की नीति को महत्त्व देना समझा जा सकता है। इसके अतिरिक्त, यह आशंका भी थी कि आयातित खाद्यान्न, विदेशी प्रौद्योगिकी और पूँजी पर निर्भरता किसी न किसी रूप में हमारे देश की नीतियों में विदेशी हस्तक्षेप को बढ़ाकर हमारी संप्रभुता में बाधा डाल सकती थी।

समानताः केवल संवृद्धि, आधुनिकीकरण और आत्मनिर्भरता के द्वारा ही जनसामान्य के जीवन में सुधार नहीं आ सकता। किसी देश में उच्च संवृद्धि दर और विकसित अत्याधुनिक प्रौद्योगिकी का प्रयोग होने के बाद भी अधिकांश लोग गरीब हो सकते हैं। यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि आर्थिक समृद्धि के लाभ देश के निर्धन वर्ग को भी सुलभ हों, केवल धनी लोगों तक ही सीमित न रहें। अतः संवृद्धि, आधुनिकीकरण और आत्मनिर्भरता के साथ-साथ समानता भी महत्त्वपूर्ण हैः प्रत्येक भारतीय को भोजन, अच्छा आवास, शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाएँ जैसी मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा कर पाने में समर्थ होना चाहिए और धन संपत्ति के वितरण की असमानताएँ भी कम होनी चाहिए।

आइए, अब यह जानने का प्रयास करें कि 1950 से 1990 तक की अवधि में लागू की गई प्रथम सात पंचवर्षीय योजनाओं ने किस प्रकार इन चार लक्ष्यों की प्राप्ति के प्रयास किए तथा कृषि, उद्योग और व्यापार के संदर्भ में ये प्रयास कहाँ तक सफल रहे। वर्ष 1991 के बाद

© NCERT not to be republished

Reprint 2026-27

बॉक्स 2.5 स्वामित्व तथा प्रेरणाएँ

'किसान को भूमि' यह नीति इस विचारधारा पर आधारित है कि यदि किसानों को भूमि का स्वामी बना दिया जाए तो वे उत्पादन बढ़ाने में अधिक रुचि (उन्हें अधिक प्रेरणा मिलेगी) लेंगे। ऐसा इसलिए है क्योंकि भू-स्वामित्व से कृषक को अधिक उत्पादन का लाभ मिलता है। काश्तकारों को भूमि में सुधारों की कोई प्रेरणा नहीं होती, क्योंकि अधिक उत्पादन से जमींदार को ही लाभ मिलता है। प्रेरणा प्रदान करने में स्वामित्व के महत्त्व को बताने के लिये पूर्व सोवियत संघ के किसानों के द्वारा बिक्री हेतु फलों की पैकिंग करने में लापरवाही का उदाहरण दिया जाता है। वे सड़े-गले फलों और ताजे फलों को एक ही बॉक्स में पैक कर देते थे। आज प्रत्येक किसान यह जानता है कि सड़े-गले फल ताजे फलों को भी खराब कर देते हैं, यदि उन्हें एक साथ पैक किया जाये। इससे किसान को ही हानि होगी, क्योंकि फल बिक नहीं पायेंगे।

अत: प्रश्न उठता है कि सोवियत संघ के किसान ऐसा काम क्यों करते थे जो उनको साफ तौर पर हानि पहुँचाये? इसका अर्थ किसानों के सम्मुख प्रेरणाओं से है, क्योंकि पूर्व सोवियत संघ में किसान भूमि के स्वामी नहीं थे। अत: न उन्हें लाभ होता था और न हानि। स्वामित्व न होने के कारण, कृषकों को दक्ष होने की कोई प्रेरणा नहीं होती थी। इससे इस बात की भी जानकारी मिलती है कि अति उपजाऊ, विशाल कृषि क्षेत्र के उपलब्ध होने के बावजूद सोवियत संघ में कृषि क्षेत्रक का उत्पादन कम क्यों था?

स्रोत: *थामस सोवेल, बेसिक इकॉनामिक्स: द सिटीजन्स गाइड टू दी इकॉनामी, न्यूयार्क: बेसिक बुक्स, 2004, दूसरा संस्करण।*

अपनाई गई नीतियों और विकासात्मक मुद्दों के बारे में आप अगले अध्याय में पढ़ेंगे।

2.3 कृषि

आपने पहले अध्याय में पढ़ा कि औपनिवेशिक शासन काल में कृषि क्षेत्रक में न तो संवृद्धि हुई और न ही समता रह पाई। स्वतंत्र भारत के नीति-निर्माताओं को इन मुद्दों पर विचार करना पड़ा तथा उन्होंने भू-सुधारों तथा उच्च पैदावार वाली किस्म के बीजों के प्रयोग द्वारा भारतीय कृषि में एक क्रांति का संचार किया।

भू-सुधार: स्वतंत्रता प्राप्ति के समय देश की भू-धारण पद्धति में जमींदार-जागीरदार आदि का वर्चस्व था। ये खेतों में कोई सुधार किये बिना, मात्र लगान की वसूली किया करते थे। भारतीय कृषि क्षेत्रक की निम्न उत्पादकता के कारण भारत को संयुक्त राज्य अमेरिका (यू.एस.ए.) से अनाज का आयात करना पड़ा। कृषि में समानता लाने के लिये भू-सुधारों की आवश्यकता हुई, जिसका मुख्य ध्येय जोतों के स्वामित्व में परिवर्तन करना था। स्वतंत्रता के एक वर्ष बाद ही देश में बिचौलियों के उन्मूलन तथा वास्तविक कृषकों को ही भूमि का स्वामी बनाने जैसे कदम उठाये गये। इसका उद्देश्य यह था कि भूमि का स्वामित्व किसानों को निवेश करने की प्रेरणा देगा (बॉक्स 2.5), बशर्ते उन्हें पर्याप्त पूँजी उपलब्ध कराई जाए। दरअसल समानता को बढ़ाने के लिये भूमि की अधिकतम **सीमा निर्धारण** एक दूसरी नीति थी। इसका अर्थ

Reprint 2026-27

है– किसी व्यक्ति की कृषि भूमि के स्वामित्व की अधिकतम सीमा का निर्धारण करना। इस नीति का उद्देश्य कुछ लोगों में भू–स्वामित्व के संकेंद्रण को कम करना था।

बिचौलियों के उन्मूलन का नतीजा यह था कि लगभग 200 लाख काश्तकरों का सरकार से सीधा संपर्क हो गया तथा वे जमींदारों के द्वारा किये जा रहे शोषण से मुक्त हो गए। भू–स्वामित्व से उन्हें उत्पादन में वृद्धि के लिए प्रोत्साहन मिला। इससे कृषि उत्पादन में वृद्धि हुई। किंतु बिचौलियों के उन्मूलन कर समानता के लक्ष्य की पूर्ण प्राप्ति नहीं हो पाई। कानून की कमियों का लाभ उठाकर कुछ भूतपूर्व जमींदारों ने कुछ क्षेत्रों में बहुत बड़े–बड़े भूखंडों पर अपना स्वामित्व बनाए रखा। कुछ मामलों में काश्तकारों को बेदखल कर दिया गया और भू–स्वामियों ने अपने किसान भू–स्वामी (वास्तविक कृषक) होने का दावा किया। कृषकों को भूमि का स्वामित्व मिलने के बाद भी निर्धनतम कृषि श्रमिकों (जैसे बटाईदार तथा भूमिहीन श्रमिक) को भूमि–सुधारों से कोई लाभ नहीं हुआ।

अधिकतम भूमि सीमा निर्धारण कानून में भी बाधाएँ आईं। बड़े जमीदारों ने इस कानून को न्यायालयों में चुनौती दी, जिसके कारण इसे लागू करने में देर हुई। इस अवधि में वे अपनी भूमि निकट संबंधियों आदि के नाम कराकर कानून से बच गये। कानून में भी अनेक कमियाँ थी, जिनके द्वारा बड़े जमीदारों ने भूमि पर अधिकार बनाए रखने के लिए लाभ उठाया। केरल और पश्चिम बंगाल की सरकारें वास्तविक किसान को भूमि देने की नीति के प्रति प्रतिबद्ध थीं, इसी कारण इन प्रांतों में भू–सुधार कार्यक्रमों को विशेष सफलता मिली। दुर्भाग्यवश, अन्य प्रांतों की सरकारों में इस स्तर की प्रतिबद्धता

Reprint 2026-27

नहीं थी, अतएव आज तक जोतों में भारी असमानता बनी हुई है।

हरित क्रांति: स्वतंत्रता के समय देश की 75 प्रतिशत जनसंख्या कृषि पर आश्रित थी। इस क्षेत्रक में उत्पादकता बहुत ही कम थी, क्योंकि पुरानी प्रौद्योगिकी का प्रयोग किया जाता था और अधिसंख्य किसानों के पास आधारिक संरचना का भी नितांत अभाव था। भारत की कृषि मानसून पर निर्भर है। यदि मानसून स्तर कम होता था तो किसानों को कठिनाई होती थी, क्योंकि उन्हें सिंचाई सुविधाएँ उपलब्ध न थीं। यह सुविधा कुछ ही किसानों के पास थीं। औपनिवेशिक काल का कृषि गतिरोध हरित क्रांति से स्थायी रूप से समाप्त हो गया। इसका तात्पर्य उच्च पैदावार वाली किस्मों के बीजों (HYV) के प्रयोग से है, विशेषकर गेहूँ तथा चावल उत्पादन में वृद्धि से। इन बीजों के प्रयोग के लिए पर्याप्त मात्रा में उर्वरकों, कीटनाशकों तथा निश्चित जल पूर्ति की भी आवश्यकता थी। इन आगतों का सही अनुपात में प्रयोग होना भी महत्त्वपूर्ण है। बीजों की अधिक पैदावार वाली किस्मों से लाभ उठाने वाले किसानों को सिंचाई की विश्वसनीय सुविधाओं और उर्वरकों तथा कीटनाशकों आदि की खरीदारी के लिए वित्तीय संसाधनों की आवश्यकता थी। अत: हरित क्रांति के पहले चरण में (लगभग 1960 के दशक के मध्य से 1970 के दशक के मध्य तक) HYV बीजों का प्रयोग पंजाब, आंध्रप्रदेश और तमिलनाडु जैसे अधिक समृद्ध राज्यों तक ही सीमित रहा। इसके अतिरिक्त, HYV बीजों का लाभ केवल गेहूँ पैदा करने वाले क्षेत्रों को ही मिल पाया। हरित क्रांति के द्वितीय चरण (1970 के दशक के मध्य से 1980 के दशक के मध्य तक) में HYV बीजों की प्रौद्योगिकी का विस्तार कई राज्यों तक पहुँचा और कई फसलों को लाभ हुआ। इस प्रकार, हरित क्रांति प्रौद्योगिकी के प्रसार से भारत को खाद्यान उत्पादन में आत्मनिर्भरता प्राप्त हुई। अब भारत अपने खाद्य संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अमेरिका या किसी अन्य देश की कृपा पर निर्भर नहीं थे।

यदि किसान बाज़ार में बेचने की जगह इस उत्पादन का अधिकांश भाग स्वयं ही उपभोग करें, तो अधिक उत्पादन से अर्थव्यवस्था पर कुल मिलाकर कोई फर्क नहीं पड़ेगा। दूसरी ओर, यदि किसान पर्याप्त मात्रा में अपना उत्पादन बाज़ार में बेच सकें, तो अधिक उत्पादन का निश्चिय ही अर्थव्यवस्था पर प्रभाव पड़ सकता है। किसानों द्वारा उत्पादन का बाज़ार में बेचा गया अंश ही **'विपणित अधिशेष'** कहलाता है। हरित क्रांति काल में किसान अपने गेहूँ और चावल के अतिरिक्त उत्पादन का अच्छा खासा भाग बाज़ार में बेच रहे थे। इसके फलस्वरूप खाद्यानों की कीमतों में, उपभोग की अन्य वस्तुओं की अपेक्षा, कमी आई। अपनी कुल आय के बहुत बड़े प्रतिशत का भोजन पर खर्च करने वाले निम्न आय वर्गों को कीमतों में इस सापेक्ष कमी से बहुत लाभ हुआ। हरित क्रांति के कारण सरकार पर्याप्त खाद्यान्न प्राप्त कर सुरक्षित स्टॉक बना सकी जिसे खाद्यान्नों की कमी के समय प्रयोग किया जा सकता था।

Reprint 2026-27

यद्यपि हरित क्रांति से देश बहुत लाभांवित हुआ है पर यह प्रौद्योगिकी पूरी तरह निरापद नहीं है। एक जोखिम यह था कि इससे छोटे और बड़े किसानों के बीच असमानताएँ बढ़ने की संभावनाएँ थी, क्योंकि केवल बड़े किसान अपेक्षित आगतों को खरीदने में सक्षम थे, जिससे उन्हें हरित क्रांति का अधिकांश लाभ प्राप्त हो जाता था। इसके अतिरिक्त, इन फसलों में कीटनाशकों के आक्रमण की भी संभावनाएं अधिक होती हैं। ऐसी दशा में, इस प्रौद्योगिकी को अपनाने वाले छोटे किसानों की फसल का सब कुछ नष्ट हो जाता है। सौभाग्यवश, सरकार द्वारा किए गये कुछ उपायों के कारण ये आशंकाएँ सत्य साबित नहीं हुईं। सरकार ने निम्न ब्याज दर पर छोटे किसानों को ऋण दिये और उर्वरकों पर आर्थिक सहायता दी, ताकि छोटे किसानों को ये आवश्यक आगत उपलब्ध हो सकें। छोटे किसानों को, इन आगतों के प्राप्ति से छोटे खेतों की उपज और उत्पादकता भी समय के साथ बड़े खेतों की पैदावार के बराबर हो गई। इस प्रकार, हरित क्रांति से छोटे-बड़े सभी किसानों को लाभ मिला। सरकार द्वारा स्थापित अनुसंधान संस्थानों की सेवाओं के कारण, छोटे किसानों के जोखिम भी कम हो गए, जो कीटनाशकों के आक्रमण से उनकी फसलों की बर्बादी का कारण थे। यदि सरकार ने इस प्रौद्योगिकी का लाभ छोटे किसानों को उपलब्ध कराने के लिए व्यापक प्रयास नहीं किये होते, तो इस क्रांति का लाभ केवल धनी किसानों को ही मिलता।

सहायिकी पर बहस: आजकल कृषि क्षेत्रक को दी जा रही आर्थिक सहायिकी का आर्थिक औचित्य एक गरमा-गरम बहस का मुद्दा बन गया है। इस बात से तो सभी सहमत हैं कि किसानों द्वारा और सामान्यत: छोटे किसानों द्वारा विशेष रूप से नई HYV प्रौद्योगिकी को अपनाने के लिए प्रोत्साहन प्रदान करने हेतु सहायिकी दी जानी आवश्यक थी। किसान प्राय: किसी भी नई प्रौद्योगिकी को जोखिम पूर्ण समझते हैं। अत: किसानों द्वारा नई प्रौद्योगिकी की परख के लिये सहायिकी आवश्यक थी। कुछ अर्थशास्त्रियों का मत है कि एक बार प्रौद्योगिकी का लाभ मिल जाने तथा उसके व्यापक प्रचलन के बाद सहायिकी धीरे-धीरे समाप्त कर देनी चाहिए, क्योंकि उनका उद्देश्य पूरा हो गया है। यही नहीं, यद्यपि सहायिकी का ध्येय तो किसानों को लाभ पहुँचाना है, किंतु उर्वरक-सहायिकी का लाभ बड़ी मात्रा में प्राय: उर्वरक उद्योग तथा अधिक समृद्ध क्षेत्र के किसानों को ही पहुँचता है। अत: यह तर्क दिया जाता है कि उर्वरकों पर सहायिकी जारी रखने का कोई औचित्य नहीं है। इनसे लक्षित समूह को लाभ नहीं होता और सरकारी कोष पर अनावश्यक भारी बोझ पड़ता है (देखें बॉक्स 2.6)। दूसरी ओर कुछ विशेषज्ञों का मत है कि सरकार को कृषि-सहायिकी जारी रखनी चाहिए, क्योंकि भारत में कृषि एक बहुत ही जोखिम भरा व्यवसाय है। अधिकांश किसान बहुत गरीब हैं और सहायिकी को समाप्त करने से वे अपेक्षित आगतों का प्रयोग नहीं कर पाएँगे। सहायिकी समाप्त करने से गरीब और अमीर किसानों के बीच असमानता और बढ़ेगी तथा समता के लक्ष्य का उल्लंघन होगा। इन विशेषज्ञों का तर्क है कि यदि सहायिकी

Reprint 2026-27

© NCERT not to be republished

बॉक्स 2.6 कीमतें-संकेतकों के रूप में

आपने पिछली कक्षा में पढ़ा होगा कि बाज़ार में कीमतों का निर्धारण किस प्रकार होता है? यह समझना आवश्यक है कि कीमतें वस्तुओं की उपलब्धता का संकेतक हैं। यदि कोई वस्तु दुर्लभ हो जाती है तो इसकी कीमत बढ़ जाती है और कीमतों के आधार पर, उसके प्रयोग के संबंध में सही निर्णय लेने की इसके उपभोक्तओं को प्रेरणा मिलती है। यदि निम्न पूर्ति के कारण पानी की कीमत बढ़ जाती है तो लोग इसका उपयोग सावधानीपूर्वक करेंगे; उदाहरण के लिए, पानी संरक्षण के लिए वे बगीचे में पानी देना बंद कर सकते हैं। जब भी पेट्रोल की कीमतें बढ़ती हैं तो हम शिकायत करते है और सरकार पर दोषारोपण करते हैं। परंतु, पेट्रोल की कीमत में वृद्धि इसकी अधिक कमी को दर्शाती है और कीमत वृद्धि इस बात का संकेतक है कि पेट्रोल कम मात्रा में उपलब्ध है– यह पेट्रोल का कम उपयोग करने और वैकल्पिक ईंधनों की तलाश की प्रेरणा देता है।

कुछ अर्थशास्त्रियों का कहना है कि सहायिकी, कीमतों को वस्तु की पूर्ति का संकेतक नहीं होने देती है। जब बिजली और पानी को सहायिकीयुक्त दरों पर या निःशुल्क प्रदान किया जाता है तो उनकी कमी का ध्यान रखे बिना, उनका फिजूल उपयोग किया जाएगा। यदि पानी निःशुल्क प्रदान किया जाएगा तो किसान पानी प्रधान फसलें उगाएँगे, भले ही उस क्षेत्र में जल संसाधनों की कमी हो और इन फसलों से दुर्लभ संसाधन भी कम हो जाएँगे। यदि पानी की कीमत दुर्लभता के अनुसार निर्धारित की जाए, तो किसान क्षेत्र के अनुकूल उपयुक्त फसलें उगाएँगे। उर्वरक कीटनाशकों पर सहायिकी संसाधनों का प्रयोग बढ़ाएगी, जो पर्यावरण के लिए हानिकारक हो सकता है। सहायिकी से फिजूल उपयोग को बढ़ावा मिलता है। प्रेरणा की दृष्टि से सहायिकी पर विचार करें और स्वयं से यह पूछें कि क्या किसानों को निःशुल्क बिजली प्रदान करना आर्थिक दृष्टि से उचित है?

से बड़े किसानों तथा उर्वरक उद्योग को अधिक लाभ हो रहा है, तो सही नीति सहायिकी समाप्त करना नहीं, बल्कि ऐसे कदम उठाना है जिनसे कि केवल निर्धन किसानों को ही इनका लाभ मिले।

1960 के दशक के अंत तक देश में कृषि उत्पादकता की वृद्धि से भारत खाद्यान्नों में आत्मनिर्भर हो गया। यह निश्चय ही गौरवपूर्ण उपलब्धि रही है। इसके बावजूद, नकारात्मक पहलू यह रहा है कि 1990 तक भी देश की 65 प्रतिशत जनसंख्या कृषि में लगी थी। अर्थशास्त्री इस निष्कर्ष पर पहुँचे है कि जैसे-जैसे देश संपन्न होता है, सकल घरेलू उत्पाद में, कृषि के योगदान में और उस पर निर्भर जनसंख्या में पर्याप्त कमी आती है। भारत में 1950–90 की अवधि में यद्यपि जी.डी.पी. में कृषि के अंशदान में तो भारी कमी आई है, पर कृषि पर निर्भर जनसंख्या के अनुपात में नहीं (जो 1950 में 67.50 प्रतिशत थी और 1990 तक घटकर 64.90 प्रतिशत ही हो पाई)। इस क्षेत्रक में इतनी उत्पादन वृद्धि तो न्यूनतम श्रम के प्रयोग द्वारा भी संभव थी, फिर इस क्षेत्रक में इतनी बड़ी संख्या में लोगों के लगे रहने की क्या आवश्यकता थी? इसका उत्तर यही है कि

Reprint 2026-27

इन्हें कीजिए

- एक छात्र समूह को किसी कृषि फार्म पर ले जाएँ और प्रयुक्त कृषि विधियों का अध्ययन करें, अर्थात बीजों की किस्में, उर्वरक, मशीनें, सिंचाई के साधन, संबद्ध लागतें, विपणीय अधिशेष तथा अर्जित आय तैयार करें। यदि विधियों में परिवर्तन की जानकारी कृषक परिवार के किसी बुजुर्ग वृद्ध सदस्य से प्राप्त की जाएगी, तो अधिक अच्छा रहेगा। उसके बादः-
  (क) निष्कर्षों पर अपनी कक्षा में चर्चा करें।
  (ख) विभिन्न उप-समूहों का एक चार्ट बनाएँ जिनमें उत्पादन लागत में परिवर्तन, उत्पादकता, बीज़ों के प्रयोग, उर्वरकों, सिचांई के साधनों, समय के प्रयोग, विपणीय अधिशेष और परिवार की आय में परिवर्तनों को दर्शाया गया हो।
- विश्व बैंक, अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व व्यापार संगठन, (G–7, G-8 और G-10 देशों) की बैठकों के बारे में समाचार पत्रों की कतरनें एकत्र करें। कृषि सहायिकी पर विकसित और विकासशील देशों द्वारा व्यक्त विचारों पर चर्चा करें।
- इस तालिका में उपलब्ध जानकारी का प्रयोग कर भारत की अर्थव्यवस्था के व्यावसायिक ढाँचे का एक पाई-चार्ट बनाएँ। दो पाई-चार्ट के आकार में परिवर्तन के संभावित कारणों पर चर्चा करें।

क्षेत्रक	1950–51	1990–91
कृषि	70.1	66.8
उद्योग	10.7	12.7
सेवाएँ	17.2	20.5

- कृषि सहायिकी के पक्ष-विपक्ष में तर्कों का अध्ययन करें। आपका इस विषय में क्या मत है?
- कुछ अर्थशास्त्रियों का तर्क है कि अन्य देशों विशेषकर विकसित देशों के किसानों को अधिक सहायिकी देकर अपना उत्पादन अन्य देशों को निर्यात करने को प्रोत्साहित किया जाता है। क्या आप समझते हैं कि हमारे किसान उन देशों के किसानों से मुकाबला कर पाएँगे? चर्चा करें।

© NCERT not to be republished

उद्योग क्षेत्रक और सेवा क्षेत्रक, कृषि क्षेत्रक में काम करने वाले लोगों को नहीं खपा पाए। अनेक अर्थशास्त्री इसे 1950–90 के दौरान अपनाई गई नीतियों की विफलता मानते हैं।

2.4 उद्योग और व्यापार

अर्थशास्त्रियों ने ऐसा पाया है कि निर्धन राष्ट्र तभी प्रगति कर पाते हैं जब उनमें अच्छे औद्योगिक क्षेत्रक होते हैं। उद्योग रोजगार उपलब्ध कराते हैं और यह कृषि में रोजगार की अपेक्षा अधिक स्थायी होते हैं। इनसे आधुनिकीकरण और समग्र समृद्धि को बढ़ावा मिलता है। इन्हीं कारणों से हमारी पंचवर्षीय योजनाओं में औद्योगिक विकास पर अत्यधिक बल दिया गया था। आपने पिछले अध्याय में पढ़ा होगा कि स्वतंत्रता के समय भारत में बहुत कम उद्योग थे। अधिकांश उद्योग सूती वस्त्र, पटसन आदि तक ही सीमित थे। जमशेदपुर और कोलकाता में लोहा व इस्पात

Reprint 2026-27

की सुप्रबंधित फर्में थीं। यदि अर्थव्यवस्था का विकास करना था, तो हमें ऐसे औद्योगिक आधार का विस्तार करने की आवश्यकता थी जिसमें विविध प्रकार के उद्योग हों।

भारतीय औद्योगिक विकास में सार्वजनिक और निजी क्षेत्रक: हमारे नीति-निर्माताओं के समक्ष एक बहुत बड़ा प्रश्न यह था कि औद्योगिक विकास में सरकार और निजी क्षेत्रक की क्या भूमिका होनी चाहिए? स्वतंत्रता प्राप्ति के समय भारत के उद्योगपतियों के पास भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास हेतु उद्योगों में निवेश करने के लिए अपेक्षित पूँजी नहीं थी। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय इतना बड़ा बाज़ार भी नहीं था, जिसमें उद्योगपतियों को मुख्य परियोजनाएँ शुरू करने के लिए प्रोत्साहन मिलता। यद्यपि उनके पास ऐसा करने के लिए पूँजी भी थी। इन्हीं कारणों से सरकार को औद्योगिक क्षेत्र को प्रोत्साहन देने में व्यापक भूमिका निभानी पड़ी। इसके अतिरिक्त, भारतीय अर्थव्यवस्था को समाजवाद के पथ पर अग्रसर करने के लिए द्वितीय पंचवर्षीय योजना में यह निर्णय लिया गया कि सरकार अर्थव्यवस्था में बड़े तथा भारी उद्योगों का नियंत्रण करेगी। इसका अर्थ यह था कि सरकार उन उद्योगों पर पूरा नियंत्रण रखेगी, जो अर्थव्यवस्था के लिए महत्वपूर्ण थे। निजी क्षेत्रक की नीतियाँ सार्वजनिक क्षेत्रक की नीतियों की अनुपूरक होंगी और सार्वजनिक क्षेत्रक अग्रणी भूमिका निभायेगा।

औद्योगिक नीति प्रस्ताव, 1956: भारी उद्योगों पर नियंत्रण रखने के सरकार के लक्ष्य के अनुसार औद्योगिक नीति प्रस्ताव, 1956 को अंगीकार किया गया। इस प्रस्ताव को द्वितीय पंचवर्षीय योजना का आधार बनाया गया। द्वितीय योजना में ही समाज के समाजवादी स्वरूप का आधार तैयार करने का प्रयास किया गया। इस प्रस्ताव के अनुसार, उद्योगों को तीन वर्गों में वर्गीकृत किया गया। प्रथम वर्ग में वे उद्योग शामिल थे, जिन पर सरकार का अनन्य स्वामित्व था। दूसरे वर्ग में वे उद्योग शामिल थे, जिनके लिए निजी क्षेत्रक, सार्वजनिक क्षेत्रक के साथ मिल कर प्रयास कर सकते थे, परंतु जिनमें नई इकाइयों को शुरू करने की एकमात्र जिम्मेदारी राज्य की होती। तीसरे वर्ग में वे उद्योग शामिल थे, जो निजी क्षेत्रक के अंतर्गत आते थे।

यद्यपि निजी क्षेत्रक में आने वाले उद्योगों का भी एक वर्ग था, लेकिन इस क्षेत्रक को लाइसेंस पद्धति के माध्यम से राज्य के नियंत्रण में रखा गया। नये उद्योगों को तब तक अनुमति नहीं दी जाती थी, जब तक सरकार से लाइसेंस नहीं प्राप्त कर लिया जाता था। इस नीति का प्रयोग पिछड़े क्षेत्रों में उद्योगों को प्रोत्साहित करने के लिए किया गया। यदि उद्योग आर्थिक रूप से पिछड़े क्षेत्रों में लगाए गए, तो लाइसेंस प्राप्त करना आसान था। इसके अतिरिक्त, उन इकाइयों को कुछ रियायतें जैसे, कर लाभ तथा कम प्रशुल्क पर बिजली दी गई। इस नीति का उद्देश्य क्षेत्रीय समानता को बढ़ावा देना था।

वर्तमान उद्योग को भी उत्पादन बढ़ाने या विविध प्रकार के उत्पादन (वस्तुओं की नई किस्मों का उत्पादन) करने के लिए लाइसेंस प्राप्त करना होता था। इसका अर्थ यह सुनिश्चित करना था कि उत्पादित वस्तुओं की मात्रा अर्थव्यवस्था द्वारा अपेक्षित मात्रा से अधिक न

Reprint 2026-27

हो। उत्पादन बढ़ाने का लाइसेंस केवल तभी दिया जाता था, जब सरकार इस बात से आश्वस्त होती थी कि अर्थव्यवस्था में बड़ी मात्रा में वस्तुओं की आवश्यकता है।

लघु उद्योग: 1955 में ग्राम तथा लघु उद्योग समिति, जिसे कर्वे समिति भी कहा जाता था, ने इस बात की संभावना पर विचार किया कि ग्राम विकास को प्रोत्साहित करने के लिए लघु उद्योगों का प्रयोग किया जाए। लघु उद्योग की परिभाषा किसी इकाई की परिसंपत्तियों के लिए दिये जाने वाले अधिकतम निवेश के संदर्भ में दी जाती है। समय के साथ-साथ निवेश की सीमा भी बदलती रही है। 1950 में लघु औद्योगिक इकाई उसे कहा जाता था, जो पाँच लाख रु. का अधिकतम निवेश करती थीं। इस समय, एक करोड़ रु का अधिकतम निवेश किया जा सकता है।

ऐसा माना जाता था कि लघु उद्योग अधिक श्रम-प्रधान होते हैं, अर्थात् उनमें बड़े पैमाने के उद्योगों की अपेक्षा श्रम का प्रयोग अधिक किया जाता है। अत: वे अधिक रोजगारों का सृजन करते हैं। लेकिन, ये बड़ी औद्योगिक फर्मों के साथ प्रतिस्पर्धा नहीं कर सकते। यह स्पष्ट है कि लघु उद्योगों के विकास के लिए बड़ी फर्मों से उनकी रक्षा किये जाने की आवश्यकता है। इस उद्देश्य के लिए, अनेक उत्पादों को लघु उद्योग के लिए आरक्षित कर दिया गया। ऐसे आरक्षण की कसौटी यह थी कि ये इकाइयाँ उन वस्तुओं के विनिर्माण के योग्य हैं। उन्हें अन्य रियायतें भी दी गई थीं जैसे, कम उत्पाद शुल्क तथा कम ब्याज दरों पर बैंक-ऋण।

2.5 व्यापार नीति: आयात प्रतिस्थापन

भारत द्वारा अपनाई गई औद्योगिक नीति **व्यापार नीति** से घनिष्ठ रूप से संबद्ध थी। प्रथम सात पंचवर्षीय योजनाओं में व्यापार की विशेषता अंतर्मुखी व्यापार नीति थी। तकनीकी रूप से इस नीति को **आयात-प्रतिस्थापन** कहा जाता है। इस नीति का उद्देश्य आयात के बदले घरेलू उत्पादन द्वारा पूर्ति करना है। उदाहरण के लिए, विदेश में निर्मित वाहनों का आयात करने के स्थान पर उन्हें भारत में ही निर्मित करने के लिए उद्योगों को प्रोत्साहित किया जाय। इस नीति के अनुसार, सरकार ने विदेशी प्रतिस्पर्धा से घरेलू उद्योगों की रक्षा की। आयात संरक्षण के दो प्रकार थे: प्रशुल्क और कोटा। प्रशुल्क, आयातित वस्तुओं पर लगाया गया कर है। प्रशुल्क लगाने पर आयातित वस्तुएँ अधिक महँगी हो जाती हैं, जो वस्तुओं के प्रयोग को हतोत्साहित करती हैं। कोटे में वस्तुओं की मात्रा निर्दिष्ट की होती है, जिन्हें आयात किया जा सकता है। प्रशुल्क और कोटे का प्रभाव यह होता है कि उनसे आयात प्रतिबंधित हो जाते हैं और उनसे विदेशी प्रतिस्पर्धा से देशी फर्मों की रक्षा होती है।

संरक्षण की नीति इस धारणा पर आधारित था कि विकासशील देशों के उद्योग अधिक विकसित देशों द्वारा उत्पादित वस्तुओं से प्रतिस्पर्धा करने की स्थिति में नहीं था। यह माना जाता है कि यदि घरेलू उद्योगों का संरक्षण किया जाता था, तो समय के साथ वे प्रतिस्पर्धा करना भी सीख लेंगे। हमारे योजनाकारों को भी यह आशंका थी

Reprint 2026-27

इन्हें कीजिए

➤ सकल घरेलू उत्पाद के लिए क्षेत्रकवार योगदान से संबंधित निम्नलिखित सारणी के लिए एक पाई चार्ट बनाइए और 1990–91 के दौरान विकास के प्रयासों को ध्यान में रखते हुए क्षेत्रकों के योगदान में हुए अंतर पर चर्चा कीजिए।

क्षेत्रक	*1950–51*	*1990–91*
कृषि 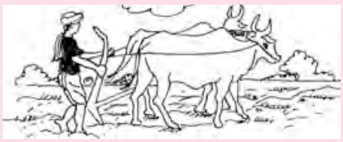	59.0	34.9
उद्योग	13.0	24.6
सेवाएँ	28.0	40.5

➤ कक्षा के छात्रों को दो समूहों में विभाजित करते हुए सार्वजनिक क्षेत्रक के उपक्रमों की उपयोगिता के बारे में अपनी कक्षा में एक वाद-विवाद आयोजित कीजिए। एक समूह सार्वजनिक क्षेत्रकों के उपक्रमों के पक्ष में बोलेगा और दूसरा समूह इसके विपक्ष में बोलेगा (यथासंभव इसमें अधिक-से-अधिक छात्रों को शामिल कीजिए और उन्हें उदाहरण देने के लिए प्रोत्साहित कीजिए)।

© NCERT not to be republished

कि यदि आयातों पर प्रतिबंध लगाया जाता था तो विलासिता की वस्तुओं के आयात पर विदेशी-मुद्रा खर्च होने की संभावना बढ़ जाती। 1980 के दशक के मध्य तक निर्यात-संवर्धन पर कोई गंभीर विचार नहीं किया गया था।

औद्योगिक विकास पर नीतियों का प्रभाव: प्रथम सात पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान भारत के औद्योगिक क्षेत्रक की उपलब्धियाँ वस्तुत: उल्लेखनीय रही हैं। औद्योगिक क्षेत्रक द्वारा प्रदत्त जी.डी.पी. का अनुपात 1950–51 में 13 प्रतिशत से बढ़कर 1990–91 में 24.6 प्रतिशत हो गया। जी.डी.पी. से उद्योगों में हिस्सेदारी में बढ़ोतरी विकास का एक महत्वपूर्ण सूचक है। इस अवधि के दौरान औद्योगिक क्षेत्रक की 6 प्रतिशत वार्षिक संवृद्धि दर प्रशंसनीय है। भारतीय उद्योग सूती वस्त्र और पटसन तक ही सीमित नहीं थे। वस्तुत: औद्योगिक क्षेत्रक प्राय: सार्वजनिक क्षेत्रक के कारण विविधतापूर्ण बन गया था। लघु उद्योगों के संवर्धन से उन लोगों को अवसर प्राप्त हुए जिनके पास व्यवसाय में प्रवेश करने के

Reprint 2026-27

लिए बड़े फर्मों को प्रारंभ करने हेतु पूँजी नहीं थी। विदेशी प्रतिस्पर्धा के प्रति संरक्षण से उन इलेक्ट्रोनिकी व ऑटोमोबाइल क्षेत्रकों में देशी उद्योगों का विकास हुआ, जिनका विकास अन्यथा संभव नहीं था।

भारतीय अर्थव्यवस्था की संवृद्धि में सार्वजनिक क्षेत्रक द्वारा किए गए योगदान के बावजूद कुछ अर्थशास्त्रियों ने सार्वजनिक क्षेत्रक के अनेक उद्यमों के निष्पादन की कड़ी आलोचना की है। इस अध्याय के प्रारंभ में यह प्रस्तावित किया गया था कि शुरू में सार्वजनिक क्षेत्रक की आवश्यकता अधिक थी। अब यह व्यापक रूप से स्वीकार किया गया है कि सरकारी उद्यमों ने कुछ वस्तुओं एवं सेवाओं का उत्पादन (प्रायः उन पर एकाधिकार रखते हुए) जारी रखा, जिनकी कोई आवश्यकता नहीं थी। दूरसंचार सेवा का प्रावधान किया जाना दूसरा उदाहरण है। इस उद्योग को सार्वजनिक क्षेत्रक में आरक्षण प्रदान किया गया जबकि देखा गया कि निजी क्षेत्रक के फर्म भी उपलब्ध करा सकते हैं। 1990 के दशक के अंत तक भी प्रतिस्पर्धा न होने के कारण व्यक्ति को टेलीफोन कनेक्शन लेने में लंबे समय तक प्रतीक्षा करनी पड़ती थी। इसका दूसरा उदाहरण मॉडर्न ब्रेड की स्थापना है, जो ब्रेड विनिर्माण करने वाली एक फर्म है जैसे कि निजी क्षेत्रक ब्रेड का निर्माण ही नहीं कर सकता था। 2001 में यह फर्म निजी क्षेत्रक को बेच दी गई। मुख्य बात यह है कि भारतीय अर्थव्यवस्था को योजना विकसित करने के चार दशक बाद भी इन दोनों के बीच कोई अंतर नहीं किया गया कि (क) केवल सार्वजनिक क्षेत्रक क्या कर सकता है और (ख) निजी क्षेत्रक भी क्या कर सकता है? उदाहरण के लिए, आज भी केवल सार्वजनिक क्षेत्रक ही राष्ट्रीय सुरक्षा प्रदान करता है। यद्यपि सार्वजनिक क्षेत्रक होटलों की भी व्यवस्था कर सकता है, तथापि सरकार होटल चलाती है। इस आधार पर कुछ विद्वानों ने यह तर्क दिया है कि राज्य को उन क्षेत्रों से हट जाना चाहिए जिनमें निजी क्षेत्रक कार्य कर सकते हैं। सरकार ऐसी महत्वपूर्ण सेवाओं पर संसाधनों का संकेंद्रण कर सकती है, जिन्हें निजी क्षेत्रक उपलब्ध नहीं करा सकते।

अनेक सार्वजनिक क्षेत्रक की फर्मों ने भारी नुकसान उठाया था, लेकिन उन्होंने काम जारी रखा क्योंकि किसी सरकारी उपक्रम का बंद किया जाना कठिन है। भले ही इसके कारण राष्ट्र के सीमित संसाधनों का निकास होता रहे। इसका अर्थ यह नहीं है कि निजी फर्मों को सदैव लाभ होता ही हो (वास्तव में कुछ सार्वजनिक क्षेत्रक की फर्में मूलतः निजी फर्में थीं, जो हानि के कारण बंद होने को थीं।) उसके बाद कामगारों की नौकरियों की संरक्षा के लिए उनका राष्ट्रीयकरण कर दिया गया। बहरहाल, नुकसान उठाने वाली निजी फर्में, अपने को बनाए रखने के लिए, संसाधनों का अपव्यय नहीं होने देंगी।

किसी उद्योग को शुरू करने के लिए आवश्यक लाइसेंस का कुछ औद्योगिक घरानों द्वारा दुरुपयोग किया गया। बड़े उद्योगपति नई फर्म शुरू करने के लिए नहीं, बल्कि नए प्रतिस्पर्धियों को रोकने के लिए लाइसेंस प्राप्त कर लेते थे। **परमिट लाइसेंस राज** के अत्यधिक नियमन के कारण कुछ फर्में कार्यकुशल नहीं

Reprint 2026-27

बन पाई। उद्योगपति अपने उत्पादन के विषय में विचार करने की अपेक्षा लाइसेंस प्राप्त करने की कोशिश में और संबंधित मंत्रालयों में लॉबी बनाने में समय व्यतीत करते थे।

विदेशी प्रतिस्पर्धा से संरक्षण की आलोचना भी इस आधार पर की जा रही है कि यह उस स्थिति के बाद भी जारी रहा, जब यह सिद्ध हो चुका था कि इससे लाभ के स्थान पर नुकसान अधिक होगा। आयातों पर प्रतिबंधों के कारण भारतीय उपभोक्ताओं को उन वस्तुओं को खरीदना पड़ता था, जिनका उत्पादन भारतीय उत्पादक करते थे। उत्पादक इस बात से अवगत थे कि उनके पास एक आबद्ध बाज़ार है, अतः उन्हें अपनी वस्तुओं की गुणवत्ता सुधारने हेतु कोई प्रेरणा नहीं थी। जब वे घटिया वस्तुओं को ऊँची कीमतों पर बेच सकते थे, तब वे उनकी गुणवत्ता में सुधार करने की क्यों सोचते! आयातों की प्रतिस्पर्धा ने हमारे उत्पादकों को और अधिक दक्ष बनने को बाध्य किया। कुछ अर्थशास्त्रियों का भी मत है कि सार्वजनिक क्षेत्रक का प्रयोजन लाभ कमाना नहीं है, बल्कि राष्ट्र के कल्याण को बढ़ावा देना है। इस दृष्टि से सार्वजनिक क्षेत्रक की फर्मों का मूल्यांकन जनता के कल्याण के आधार पर किया जाना चाहिए। उनका मूल्यांकन उनके द्वारा कमाये गये लाभों के आधार पर नहीं किया जाना चाहिए। संरक्षण के संबंध में कुछ अर्थशास्त्रियों का यह मत है कि हमें विदेशी प्रतिस्पर्धा से उत्पादनों का संरक्षण तब तक करना चाहिए, जब तक धनी राष्ट्र ऐसा करते रहें। इन सभी विरोधों के कारण अर्थशास्त्रियों ने हमारी नीति में परिवर्तन करने का आग्रह किया। अन्य समस्याओं सहित इस समस्या के कारण सरकार ने 1991 में नई आर्थिक नीति प्रारंभ की।

2.6 निष्कर्ष

प्रथम सात पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान भारतीय अर्थव्यवस्था की प्रगति उल्लेखनीय रही। हमारे उद्योग स्वतंत्रता प्राप्ति के समय की स्थिति की तुलना में विविधतापूर्ण हो गये। हरित क्रांति के परिणामस्वरूप भारत खाद्य उत्पादन में आत्मनिर्भर बन गया। भूमि सुधारों का परिणाम यह हुआ कि घृणित जमींदारी प्रथा का उन्मूलन हो गया, औद्योगिक क्षेत्र में अनेक अर्थशास्त्री सार्वजनिक क्षेत्रक के उद्यमों के निष्पादन से असंतुष्ट थे। अतिशय सरकारी नियमन के कारण उद्यमवृत्ति अवरुद्ध हो गई। आत्मनिर्भरता के नाम पर भारतीय उत्पादकों का संरक्षण विदेशी प्रतिस्पर्धा से किया गया और इससे उन्हें, उनके द्वारा उत्पादित वस्तुओं की गुणवत्ता में सुधार करने की प्रेरणा नहीं मिली। भारतीय नीतियाँ अंतर्मुखी थीं, उससे एक सशक्त निर्यात क्षेत्रक विकसित करने में विफल रहे। बदलते हुए वैश्विक आर्थिक परिदृश्य के प्रसंग में यह सर्वत्र महसूस किया जा रहा था कि आर्थिक नीति में सुधार करने की आवश्यकता है। भारतीय अर्थव्यवस्था को और अधिक सफल बनाने के लिए 1991 में एक नई आर्थिक नीति शुरू की गई। इस विषय पर अगले अध्याय में चर्चा की जायेगी।

Reprint 2026-27

पुनरावर्तन

- स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत ने एक आर्थिक पद्धति की कल्पना की, जिसमें समाजवाद और पूँजीवाद की विशेषताएँ सम्मिलित थीं। इसकी परिणति मिश्रित अर्थव्यवस्था मॉडल के रूप में हुई।
- सभी आर्थिक योजनाएँ पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से ही निर्मित की गई हैं।
- पंचवर्षीय योजनाओं के लक्ष्य हैं–संवृद्धि, आधुनिकीकरण, आत्मनिर्भरता और समानता।
- कृषि क्षेत्रक में मुख्य नीतिगत पहल थे– भूमि सुधार तथा हरित क्रांति।
- इन पहलों से भारत को खाद्यान्नों के उत्पादन में आत्मनिर्भर बनने में सहायता मिली।
- कृषि पर निर्भर रहने वाले लोगों का अनुपात कम नहीं हुआ, जैसी कि आशा थी।
- औद्योगिक क्षेत्रों में नीतिगत, आयात स्थानापन्न पहलों ने सकल घरेलू उत्पाद के लिए इसके योगदान में वृद्धि की।
- औद्योगिक क्षेत्रक में एक बड़ी कमी यह थी की सार्वजनिक क्षेत्रक की कार्य पद्धति कुशल नहीं थी क्योंकि यह घाटे की ओर उन्मुख थी, जिसके परिणामस्वरूप राष्ट्र के सीमित संसाधनों का बहिर्गमन और नुकसान हुआ।

© NCERT not to be republished

अभ्यास

1. योजना की परिभाषा दीजिए।
2. भारत ने योजना को क्यों चुना?
3. योजनाओं के लक्ष्य क्या होने चाहिए?
4. उच्च पैदावारवाली किस्म (HYV)बीज क्या होते हैं?
5. विक्रय अधिशेष क्या है?
6. कृषि क्षेत्रक में लागू किये गये भूमि सुधार की आवश्यकता और उनके प्रकारों की व्याख्या कीजिए।
7. हरित क्रांति क्या है? इसे क्यों लागू किया गया और इससे किसानों को कैसे लाभ पहुँचा? संक्षेप में व्याख्या कीजिए।
8. योजना उद्देश्य के रूप में 'समानता के साथ संवृद्धि' की व्याख्या कीजिए।

Reprint 2026-27

9. 'क्या रोजगार सृजन की दृष्टि से योजना उद्देश्य के रूप में आधुनिकीकरण विरोधाभास पैदा करता है?' व्याख्या कीजिए।
10. भारत जैसे विकासशील देश के रूप में आत्मनिर्भरता का पालन करना क्यों आवश्यक था?
11. किसी अर्थव्यवस्था का क्षेत्रक गठन क्या होता है? क्या यह आवश्यक है कि अर्थव्यवस्था के जी.डी.पी. में सेवा क्षेत्रक को सबसे अधिक योगदान करना चाहिए? टिप्पणी करें।
12. योजना अवधि के दौरान औद्योगिक विकास में सार्वजनिक क्षेत्रक को ही अग्रणी भूमिका क्यों सौंपी गई थी?
13. इस कथन की व्याख्या करें: 'हरित क्रांति ने सरकार को खाद्यान्नों के प्रापण द्वारा विशाल सुरक्षित भंडार बनाने के योग्य बनाया, ताकि वह कमी के समय उसका उपयोग कर सके'।
14. सहायिकी किसानों को नई प्रौद्योगिकी का प्रयोग करने को प्रोत्साहित तो करती है पर उसका सरकारी वित्त पर भारी बोझ पड़ता है। इस तथ्य को ध्यान में रखकर सहायिकी की उपयोगिता पर चर्चा करें।
15. हरित क्रांति के बाद भी 1990 तक भारत की 65 प्रतिशत जनसंख्या कृषि क्षेत्रक में ही क्यों लगी रही?
16. यद्यपि उद्योगों के लिए सार्वजनिक क्षेत्रक बहुत आवश्यक रहा है, पर सार्वजनिक क्षेत्र के अनेक उपक्रम ऐसे हैं जो भारी हानि उठा रहे हैं और इस क्षेत्रक के अर्थव्यवस्था के संसाधनों की बर्बादी के साधन बने हुए हैं। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए सार्वजनिक क्षेत्रक के उपक्रमों की उपयोगिता पर चर्चा करें।
17. आयात प्रतिस्थापन किस प्रकार घरेलू उद्योगों को संरक्षण प्रदान करता है?
18. औद्योगिक नीति प्रस्ताव, 1956 में निजी क्षेत्रक का नियमन क्यों और कैसे किया गया था?
19. निम्नलिखित युग्मों को सुमेलित कीजिए।

1. प्रधानमंत्री	(क) अधिक अनुपात में उत्पादन देने वाले बीज
2. सकल घरेलू उत्पाद	(ख) आयात की जा सकने वाली मात्रा
3. कोटा	(ग) योजना आयोग के अध्यक्ष
4. भूमि-सुधार	(घ) किसी अर्थव्यवस्था में एक वर्ष में उत्पादित की गई सभी अंतिम वस्तुओं और सेवाओं का मौद्रिक मूल्य।
5. उच्च उत्पादकता वाले बीज	(ङ.) कृषि क्षेत्र की उत्पादकता वृद्धि के लिए किए गए सुधार।
6. सहायिकी	(च) उत्पादक कार्यों के लिए सरकार द्वारा दी गई मौद्रिक सहायता।

Reprint 2026-27

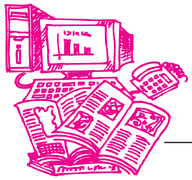

संदर्भ

भगवती, जगदीश 1993. *इंडिया इन ट्रांजीशन: फ्रईंग द इकॉनोमी,* ऑक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली।

डांडेकर वी.एम. 2004.: *फोर्टी ईयर्स आफटर इंडिपेंडेंस,* बिमल जालान (सं) इंडियन इकॉनोमी: *प्रोबलम्स एंड प्रोस्पेक्ट्स,* पेंगुइन, नई दिल्ली।

जोशी, विजय, एंड आई, एम.डी.टिप्ल 1996. *इंडियाज इकानॉमिक रिफोर्म्स, 1991–2001.* ए ऑक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली।

मोहन, राकेश 2004. *इंडस्ट्रीयल पॉलिसी एंड कंट्रोल्स,* देखें बिमल जालान (सं) इंडियन इकॉनोमी: *प्रोबलम्स एंड प्रोस्पेक्ट्स,* पेंगुइन, नई दिल्ली।

राव, सी.एच.हनुमंथा 2004. एग्रीकल्चर: पॉलिसी एंड पर्फोमेंस, इन बिमल जालन (सं), द इंडियन इकोनॉमी: प्रोब्लम एंड प्रोस्पेक्ट. पेंगुइन, दिल्ली।

© NCERT not to be republished

Reprint 2026-27